ग्रामीण किशोरों एवं अभिभावकों का मनोसामाजिक सम्बन्ध

सूरज पाण्डेय
पी-एच. डी. शोध छात्र, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

पाल्य-पालक संबंध जटिल भावनात्मक संरचनाओं से घिरा होता है। भारतीय परिदृश्य में यह संरचना एक प्रकार के अनुबंध की तरह प्रतीत होती है, जिसमें अनेक अनकही शर्तें देखने को मिलती हैं। इनका पालन करना न केवल उनका दायित्व है, अपितु उनका धर्म भी माना जाता है। यह संरचनात्मक व्यवस्था उनके भविष्य में सहायक बनती दिखती है तो अनेक अवसरों पर आपस में तनाव का कारण भी। विगत कुछ दशकों में भारतीय समाज व्यवस्था में आने वाले संरचनात्मक बदलावों ने पाल्य-पालक संबंध को गंभीरता से प्रभावित किया है। इस बदलाव के मध्य हम अभिभावकों के अभिभावकत्व से संबंधित दो स्वरूपों को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। पहला, वह जो आज भी अपनी भारतीय मान्यता, परंपरा और आदर्शों के अनुरूप पारंपरिक ढंग से अपने बच्चों का पालन-पोषण कर रहे हैं तो दूसरा वह जो स्वयं को आधुनिक अभिभावक की श्रेणी में रखते हुए 'वर्तमान रोजगार की स्थिति' (करियर ओरिएंटेड) अर्थात समाज की गति एवं दिशा के अनुरूप पालते दिखाई पड़ते है। इन दोनों स्वरूपों में लक्ष्य की समानता की दृष्टि से देखें तो दोनों का अंतिम लक्ष्य अपने बच्चों की प्रगति एवं सुखमय जीवन की प्राप्ति है। किंतु इन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु निर्देशन का सूक्ष्मतम दृष्टि से अवलोकन यह स्पष्ट करता है कि एक की सफलता के मध्य पारिवारिक मूल्य, संतोष और संवेदनायुक्त जीवन परिणाम रूप में निहित है तो दूसरे का लक्ष्य भौतिक संसाधनों की प्राप्ति (स्टेट्स सिंबल) के रूप में सफलता को मानता है, जिसमें अनेक अवसरों पर वह बच्चा परिवार एवं समाज से दूर एकाकी जीवन की ओर बढ़ता दिखाई पड़ता है। दोनों ही रूपों में लक्ष्य की समानता के अतिरिक्त पर्याप्त भेद विद्यमान है।

इस तथ्य का परीक्षण यदि हम वर्तमान में शहरों में निवास करने वाले बुजुर्ग दंपत्ति से करें तो प्रायः देखने को मिलता है कि उन्होंने अनजाने में ही अपने बच्चों को ऐसा जीवन प्रदान कर दिया है, जो उन्हें उनसे दूर ले गया। इस संबंध में जब एक उच्च पद पर कार्य कर चुके रिटायर्ड अधिकारी से बात की गई तो वह बताते है, वे बहुत छोटी सी आयु में पढ़ाई के लिए घर *(*गांव*)* से दूर छात्रावास में रहने लगे थे। उन्होंने जब पढ़-लिखकर एक प्रतिष्ठित नौकरी प्राप्त कर ली तो वापस घर लौटने का प्रश्न ही नहीं था। ऐसी स्थिति में माँ-पिता जी को काफी दिनों तक गाँव में अकेले रहना पड़ा। बाद में जब उन्होंने कोशिश की तो वे गाँव से आने को तैयार ही नहीं हुए। वे कहते हैं, 'अब जब अपने बच्चों को देखता हूँ तो वो भी पहले पढ़ाई के लिए दूसरे देश चले गए और अब वहीं नौकरी करने लगे है। पहले तो वे कुछ समय के लिए आते थे, लेकिन अब मुझे ही समय निकालकर उनसे मिलने के लिए जाना पड़ता है। *''* इसी प्रकार की स्थिति अब गांवों में भी सामान्यतः होती जा रही है। छोटे-छोटे गांवों से एक बड़ी संख्या में कम आयु में बच्चे रोजगार के लिए आस-पास के राज्यों में जाने लगे है। यद्यपि अभी गांवों में माँ-पिता जी के अकेले रह जाने वाली स्थिति बहुत कम परिवारों में देखने को मिलती है। इसका एक बड़ा कारण गांव में अन्य सगे-संबंधियों की उपस्थिति तथा ग्रामीण सामाजिक संरचना है। इस संबंध में जब एक ग्रामीण अभिभावक से संवाद स्थापित किया गया तो यह समझने का अवसर प्राप्त हुआ कि उनकी अपेक्षा है कि 'उनके बच्चे शहर की उन तमाम सुख-सुविधाओं को प्राप्त करें, जिनकी उन्हें प्राप्ति नहीं हुई है।' यहीं से अभिभावक एवं बच्चे के जीवन में अपेक्षाओं के द्वंद को देखा जा सकता है। जिस प्रकार से एक अभिभावक अपने बच्चे से अपेक्षाएं करता है, उसी प्रकार बच्चे भी अभिभावकों से अपेक्षाएं रखते हैं। किंतु जब अभिभावक अपनी अपेक्षा के अनुरूप बच्चों को वह संसाधन उपलब्ध नहीं करवा पाता है अथवा संघर्ष की स्थिति में रहते है तो दोनों की अपेक्षाएं प्रभावित होती है। उनमें से कुछ बच्चे उच्च सफलता प्राप्त कर उनके संघर्ष को अर्थ दे पाते है तो कुछ के लिए वह और भी कष्टदायी हो जाता है। इस संबंध में 'सम्यक' का उदाहरण काफी हद तक इसका व्यावहारिक रूप प्रस्तुत करता है।

> *''*सम्यक से पहली मुलाकात वर्धा के एक गाँव में शैक्षिक भ्रमण के दौरान हुई थी। कुछ समय पश्चात उसने फेसबुक पर रिक्वेस्ट भेजा तो उसे निकट से जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। इसका कारण था गांव में उसे गंदे कपड़ों में और नशा करते हुए देखना था, किंतु फेसबुक पर वह अलग व्यक्तित्व को लिए हुए था। बातचीत के क्रम में जब उससे बात करने का अवसर प्राप्त हुआ तो पता चला सम्यक के अलावा उनके दो और बड़े भाई शाहिल *(21)* और ऋषभ *(19)* है। शाहिल आई.टी.आई. करके रोजगार के लिए संघर्ष कर रहा है तो ऋषभ आंखों से देख नहीं सकता है। किंतु वह भी अंध विद्यालय से *10*वीं तक की पढ़ाई पूरी कर चुका है। सम्यक के पिता बताते हैं कि शाहिल बहुत ही अच्छा है और पूरे परिवार को उससे बहुत अधिक उम्मीदें है। इसी प्रकार ऋषभ देख नहीं सकता लेकिन वे *(*पिता*)* उसे

देहरादून स्थित विशिष्ट विद्यालय में प्रवेश *(एडमिशन)* दिलाने के लिए प्रयास कर रहे हैं। इसी प्रकार जब सम्यक के विषय में पूछा गया तो 'वे उत्तर देते हैं वह कुछ बन जाए यही बहुत है। 'सम्यक के संबंध में वे बहुत हद तक स्पष्ट नहीं है, न ही वे उसकी शिक्षा-दीक्षा के विषय में बहुत ध्यान रखते है। वे बताते हैं, उन्होंने आठवीं तक की पढ़ाई के लिए सम्यक को 'आंबेडकर छात्रावास' में डाला था, लेकिन वह वहां से भाग आया था। उसके बाद उन्होंने उसकी पढाई-लिखाई को लेकर बहुत अधिक महत्व नहीं दिया। कुछ एक अवसरों पर जब सम्यक को किसी विशेष चीज की आवश्यकता होती है तो उसे स्वयं से प्रयास करना पड़ता है। ''

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि एक ही पिता के तीन बच्चे है किंतु तीनों के पालन-पोषण में भिन्नता है। इसी प्रकार के कुछ अन्य उदाहरण भी देखने को मिले, जिसमें अभिभावक को लगता है कि उन्होंने अपने सभी बच्चों को एक समान पालन-पोषण दिया है। किंतु प्रत्येक के पालन-पोषण पर परिवार की समकालीन स्थिति तथा आस-पास के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश का व्यापक प्रभाव पड़ता है। जिसे अनजाने में अथवा अनभिज्ञतावश अभिभावक अनदेखा कर जाते हैं। कुछ समय पश्चात जब इसका व्यापक प्रभाव बच्चों के जीवनचर्या में उभरता है तो इसके लिए परिवार के साथ-साथ समाज भी बच्चे को दोषारोपित करते दिखाई पड़ता है। जबकि बच्चे ने उन्हीं संदर्भों को ग्रहण किया, जो उसके आस-पास उपलब्ध थे। इसी प्रकार सुयोग और उसके माता-पिता का उदाहरण इससे भिन्न स्थिति को व्यक्त करता है,

"सुयोग के पिता एक मिल में मैनेजर के पोस्ट पर कार्यरत है। सुयोग के अलावा उनकी एक बेटी भी है। बेटी की पढ़ाई को लेकर वे जितने निश्चित है, वहीं वे अपने बेटे को लेकर चिंतित दिखाई पढ़ते हैं। वे बताते हैं, 'उन्होंने हमेशा से अपने बच्चों का एडमिशन अच्छे विद्यालय में करवाया। उनकी शिक्षा के लिए ही वे उन्हें लेकर गांव से दूर वर्धा में किराए के मकान में भी रहे। कुछ वर्षों बाद गाँव वापस आ जाने के बाद उनकी बेटी अपनी पढ़ाई अच्छे ढंग से करती रही लेकिन बेटे की पढ़ाई प्रभावित हो गई।' इसका कारण जानने का प्रयास किया गया तो उन्होंने बताया, 'उन्होंने बेटे और बेटी दोनों को समान भाव से पढ़ाया। वे सभी चीजें दी, जो उन्होंने मांगी थी। लेकिन बेटी का पढ़ने में मन लगा रहा, पर बेटे का मन नहीं लगा।' मन नहीं लगने के संदर्भ में बताते है, 'बेटा हमेशा दोस्तों के साथ घूमता-फिरता रहता है, मोबाइल चलाता रहता है तो कहाँ से मन लगेगा ?...' आप उसे रोकते या समझाते नहीं है? के प्रश्न पर बताते हैं, 'एक समय तक बहुत समझाया, पिटाई भी की। जब तक मैं घर में रहूंगा वो सारी बात मानेगा लेकिन मेरे काम पर जाने के बाद वो वापस इधर-उधर निकल जाता है।' इस संदर्भ में जब सुयोग से बात की गई तो उसके स्वभाव में दो चरित्र देखने को मिले। पहला, वह जो अपने माँ, दोस्तों और गाँव वालों के सामने था तो दूसरा वह जो अपने पिता के सामने था। पहले चरित्र में वह स्वयं को एक हीरो के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें दोस्तों के साथ मस्ती करना, शराब पीना और खर्रा (गुटखा) खाना, पब-जी खेलना और पढ़ाई न करना जैसी आदतें देखने को मिलती है। दूसरे रूप में अपने पिता के सामने ठीक से बातें करना, गलत चीजों के विषय में पिता जी को पता न लगने देना, उनके घर आने के समय पर घर में ही रहना आदि। इसी तरह सुयोग माँ से तो अपनी सारी बातें बताता है तो पिता से बात करने से भी बचता है। सुयोग से जब यह प्रश्न किया गया कि क्या वह अपने पिता से डरता है? तो वह थोड़ा रुककर बोलता है, 'डरना तो पड़ेगा ही न.. बप्पा घर से निकाल दिए तो!'सुयोग के लिए पिता की हर बात मानना मजबूरी है तो वहीं वह इस बात को समझता है कि पापा चाहते हैं कि किसी तरह स्नातक कर ले तो शादी करने में दिक्कत नहीं आएगी और कुछ न कुछ काम पर तो लगवा ही देंगे। काम पर नहीं लगा तो पोल्ट्री फॉर्म अथवा पेट्रोल पंप तो खुलवा ही देंगे।"

सुयोग के केस में पिता की अपेक्षा माता की भूमिका अधिक प्रभावी देखने को मिलती है। पिता जहाँ एक तरफ दोनों बच्चों को समान भाव से सभी चीजें उपलब्ध करा रहे हैं तो माँ सुयोग की बुरी आदतों को पिता के सामने नहीं आने देती है। सुयोग यह स्वीकार करता है कि भावनात्मक रूप से वह अपनी माँ से अधिक जुड़ा हुआ है। वह उनसे अपने शराब पीने से लेकर प्रणय संबंध तक की सभी बातें बताता है। वहीं माँ 'इकलौते बेटे की स्थिति में' अतिरिक्त प्रेम प्रकट करती दिखाई पड़ती है और उसकी गलतियों पर पर्दा डालने का कार्य करती है। इसी प्रकार पिता की उच्च आर्थिक स्थिति और सभी चीजों की सहज उपलब्धता भी सुयोग को प्रभावित करते दिखाई पड़ती है। सुयोग को पता है कि उसके पिता के पास इतने पैसे है कि कहीं न कहीं, कुछ न कुछ दे लेकर वह उसे नौकरी पर लगवा ही देंगे। यदि नौकरी न भी लगी तो

कोई न कोई व्यवसाय तो करवा ही देंगे। इसी प्रकार ऋषिकेश का केस इससे भिन्न स्थिति को व्यक्त करता है-

> "ऋषिकेश के पिता पेशे से तो स्वयं को किसान बोलते है किंतु कृषि संबंधित आवश्यक संसाधनों (जैसे- मजदूर, धन, बीज उपलब्ध करवाना, निर्णय लेना और आय को रखने आदि) की व्यवस्था करने के अलावा कोई कार्य नही करते है। ऋषिकेश का एक बड़ा भाई है रितेश (19), जो उससे दो वर्ष बड़ा है। ऋषिकेश के विषय में रितेश बताता है कि वह काफी कम उम्र से ही लोगों के खेतों में काम करने लगा था। उसे काम करते देखने के बाद ही वह भी अन्य लोगों के खेतों में काम करना शुरू कर दिया था। लेकिन वह अपने छोटे भाई जितना मेहनत नहीं कर पाता था। जब रितेश से यह प्रश्न किया गया कि वे लोग कम उम्र से ही क्यों काम करना शुरू कर दिए तो वह बताता है पहले खेत बहुत कम था और पिता जी खेती करते नहीं थे। वे शुरू से ही उसे बटाई पर दिए हुए थे। उससे जो पैसा मिलता था उसी से सालभर काम चलता था, इसके अलावा माँ भी खेतों में काम करने जाती थी तो वह भी महीने में तीन से चार हजार कमा लेती थी। लेकिन सब मिलाकर भी केवल घर चलाने जितने ही पैसे होते थे। हम लोगों को जब जरूरत होती थी तो बहुत कम मौके होते थे कि पैसे मिलते थे। ऐसी स्थिति में ऋषिकेश जल्दी समझ गया और वह काम करने लगा। 2019 में ऋषिकेश के ही सलाह पर ही मैंने पिता जी से अपनी खेती करने को कहा। जब वे मान गए तो हम लोगों ने गाँव के ही एक अन्य व्यक्ति की जमीन बटाई पर लेकर खेती शुरू कर दी। पिछले तीन सालों से हम दोनों भाई मिलकर खेती कर रहे हैं और काफी पैसे जमा कर लिए है। रितेश और ऋषिकेश के बातों से तथा परिवार के अवलोकन से यह भी पता चला कि उनके माता-पिता के अलावा बड़े पिता जी के दो बेटों; जिनमें से एक शिक्षक है और दूसरा आर्मी में है, का अधिक प्रभाव है। दोनों ही उनके ज्यादा निकट है। जब सलाह लेने की आवश्यकता पड़ती है तो वे अपने बड़े भाइयों से बात करते हैं।"

ऋषिकेश के केस में यह देखने को मिलता है कि उनके जीवन में पिता की भूमिका अत्यंत सीमित है। बहुत ही कम उम्र में वह परिस्थितिवश स्वयं के विषय में सोचने को मजबूर हो गया। साथ ही दोनों भाइयों के जीवन में माँ और बड़े भाइयों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण हो जाती है। जहां माँ दैनिक मजदूरी करते हुए परिवार को संभालती दिखती है तो वही दोनों बच्चों को शुरू से ही घर की देखभाल, खाना बनाने जैसे कामों को भी सिखाया करती थी। इसके साथ ही बड़े भाइयों के मार्गदर्शन ने उनके पढाई को भी बहुत अधिक प्रभावित होने नहीं दिया। यद्यपि काम करने के कारण उनकी विद्यालयी शिक्षा प्रभावित हुई, किंतु वे कृषि कार्यों में निपुण हुए। इस निपुणता का ही परिणाम था कि संपूर्ण परिचर्चा के दौरान उनके मुख पर असीम संतोष और विश्वास के भाव उपस्थित थे।

अंत में यदि तीनों उदाहरणों की विवेचना करें तो सम्यक के केस में यह स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है कि पिता की अपेक्षाएं अपने तीनों पुत्रों से भिन्न-भिन्न रूप में है इसका प्रमुख कारण उनके द्वारा किया गया पालन पोषण है। उनका बड़ा बेटा शाहिल उनकी अपेक्षाओं के अनुरूप अन्य स्थान पर प्रवास की योजना बना रहा है तो सम्यक ड्राइविंग लाइसेंस बनवाने के लिए 18 वर्ष पूरे होने का इंतजार कर रहा है। वहीं सुयोग के केस में पिता की भूमिका अत्यंत कठोर होने के बाद भी माँ के अतिरिक्त प्रेम ने उसकी स्थिति को अधिक प्रभावित किया है। वह भविष्य संबंधी किसी भी निर्णय को लेने में सक्षम नहीं है। वहीं ऋषिकेश के केस में दोनों भाई पिता की भूमिका को काफी छोटी सी आयु में समझ चुके थे और माँ के साथ-साथ बड़े भाइयों के निर्देशन ने उन्हें आत्मनिर्भर बनने में मदद की। इसी प्रकार किशोर एवं अभिभावकों के कुछ अन्य प्रसंग भी देखने को मिले, जिसमें माता अथवा पिता अपने पुत्र/पुत्री को मात्र आदेश देने वाले स्थिति में नहीं रखते हैं बल्कि उनकी इच्छाओं तथा भावनाओं का सम्मान करते हुए दिखते हैं। वह बच्चे को मात्र अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप आदेशित नहीं करते बल्कि उनके सोच के अनुरूप बढ़ाते भी दिखाई देते हैं किंतु यह बदलाव आज भी आंशिक स्वरूप को ही धारण किए हुए है। अभिभावक चाहे ग्रामीण परिवेश से संबंधित हो अथवा शहरी परिवेश से दोनों की चिंताएं, अपेक्षाएं एवं आकांक्षाएं काफी हद तक समानताए लिए होती है। उनमें यदि भिन्नता होती है तो वह उनके परिवेश से प्राप्त सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों की होती है। साथ ही उनके स्वयं की विश्वदृष्टि की होती है। एक अवसर पर अपने संबोधन में मुकुल कानिटकर कहते हैं, "अभिभावक को अभिभावकत्व का आनंद लेना चाहिए न कि उन पर बोझ बनना चाहिए।"